Gyanshauryam, International Scientific Refereed Research Journal
© 2021 GISRRJ | Volume 4 | Issue 5 | ISSN : 2582-0095

बुजुर्ग पीढ़ियों का आख्यान : गिलिगडु

पुष्पा यादव
शोध छात्रा,
पंजाब केन्द्रीय विश्वविद्यालय, पंजाब, बठिंडा।

Article Info
Volume 4 Issue 5
Page Number: 63-69

Publication Issue :
September-October-2021

Article History
Accepted : 01 Sep 2021
Published : 30 Sep 2021

शोध सारांश - भारत विश्व में संबंधों की आत्मीयता और गरिमा के लिये जाना जाता है, लेकिन अब यहां भी स्थितियां बदल चुकी हैं। चित्रा ने इस उपन्यास के बहाने बुजुर्गों की दुनिया के अनेकों ऐसे मनोभावों को सूक्ष्म स्तर पर अभिव्यक्त करने की कोशिश की जिनसे हमारी युवा पीढ़ी बेखबर है। आधुनिकता बोध, उदारीकरण और सूचना प्रौद्योगिकी की आंधी ने भारतीय जीवन-मूल्यों को बिखेर दिया है। उपभोक्ततावादी संस्कृति ने वसुधैव कुटुम्बकम की भावना को खोखला सिद्ध कर दिया और संयुक्त परिवार का एकल परिवार में तब्दील होने से एकल परिवार की विसंगतियों को परिवार के बुजुर्गों को सहना पड़ता है। जहां व्यक्ति अपना संपूर्ण यौवन अपने बच्चों के लिये होम कर देता वहीं बच्चे अपने कर्तव्य से विमुख होकर माता-पिता को अकेलेपन में जीवन जीने के लिये छोड़ देते हैं। बाबू कर्नल स्वामी और बाबू जसवंत सिंह जैसे वृद्ध पात्रों की संख्या हमारे समाज में बहुत हैं जो किसी न किसी रूप में अकेलापन जीने के लिये विवश हैं। परिवार समाज की प्रथम इकाई होती है। परिवार के प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य है कि बुजुर्गों की देखभाल करें। बुजुर्गों के प्रति सम्मानजनक और गरिमामय वातावरण निर्मित करना परिवार, समाज और सरकार संयुक्त रूप से उत्तरदायित्व है।

मुख्य शब्द - बुजुर्ग, पीढ़ियां, आख्यान, गिलिगडु,, भारत, विश्व, आत्मीयता, गरिमा, परिवार, समाज।

भारत के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो प्राचीनकाल में हमारे समाज में वृद्धों की स्थिति बहुत ही सम्माननीय रही है। सामान्यत: प्रत्येक परिवार में वयोवृद्धों का वर्चस्व होता था, वह परिवार के मुखिया होते थे। परिवार के फैसले उनके हाथ में होते थे और उन्हीं की छत्रछाया में परिवार के अन्य सदस्य उनके द्वारा निर्धारित कार्यों और दायित्वों का निर्वहन करते थे, परन्तु आज के भौतिकवादी युग में वृद्धों को भी उपयोगितावादी नजरिये से देखना शुरू किया गया परिणामत: यह हुआ कि उनकी समस्याएं बढ़ने लगीं। वृद्धावस्था जीवन का अन्तिम और ऐसा पड़ाव होता जब व्यक्ति अशक्त हो जाता है, उसमें कार्य करने की क्षमता नहीं रह जाती भरण-पोषण के लिये वह दूसरों पर निर्भर करता है और यही निर्भरता वृद्धों की समस्याओं का मूल कारण है, चाहे हम शारीरिक दृष्टि से सोचे या फिर आर्थिक दृष्टि से वृद्धों को हर रूप में विवश देखा जा सकता है। गौरतलब है कि यह समस्या केवल भारत में ही नहीं वरन विश्व के विभिन्न देशों में पायी जाती है और इसका कारण है युवा वर्गों द्वारा वृद्धों को महत्त्व न दिया जाना। काल की गति क्षिप्र है वह इतनी शीघ्रता से चला जाता है कि उस पर किसी की दृष्टि नहीं जाती। एक नवजात शिशु कब अपनी शैशवावस्था छोड़ कर युवावस्था में पहुंचा और कब

Copyright: © the author(s), publisher and licensee Technoscience Academy. This is an open-access article distributed under the terms of the Creative Commons Attribution Non-Commercial License, which permits unrestricted non-commercial use, distribution, and reproduction in any medium, provided the original work is properly cited

वृद्धावस्था में यह पता नहीं चलता। मानव विकास के मनोविज्ञान के अनुसार 65 वर्ष की आयु से वृद्धावस्था की शुरुआत होती है, लेकिन मनुष्य वृद्धावस्था की कल्पना मात्र से डर जाता है, निराश हो जाता है और सब चीजों से कटा हुआ महसूस करता है। कहा जाए तो वह केन्द्र से परिधि की ओर चला जाता है या उपेक्षित हो जाता है, समाज से, परिवार से और यहां तक की अपने आप से।

वस्तुत: वृद्धावस्था जीवन के विकास की चरमावस्था है। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी का कथन है कि "इस अवस्था में लोगों के सभी भाव रस के रूप में परिणत होकर आनन्दमय हो जाते हैं। युवावस्था में प्राय: आडम्बरप्रियता और प्रदर्शनप्रियता को देखा जा सकता है, लेकिन वृद्धावस्था में यह सब नहीं रह जाते। वृद्धावस्था का सच्चा आनन्द आत्म सन्तोष है।"[1] जैसे-जैसे मनुष्य अपने आपको वृद्ध मानने लगता है तो, वह कमजोर महसूस करने लगता है तथा सहानुभूति अर्जित करने की इच्छा रखता है। भारत के परिप्रेक्ष्य में वृद्धों की स्थिति दयनीय नहीं मानी जाती रही है, यहां बड़ों का मान सम्मान किया जाता है। इसलिये कहा गया है कि

" अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविन:।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥"[2]

अर्थात प्रतिदिन बुजुर्गो को प्रणाम करने और उनकी सेवा करने वाले व्यक्ति की आयु, विद्या, कीर्ति और शक्ति की वृद्धि होगी, लेकिन वर्तमान में यहां भी स्थितियां बदल रहीं हैं और परिवार का विघटन हो रहा है। जैसे-जैसे मनुष्य बुढ़ापे की ओर चलता है वैसे-वैसे अकेलापन, संत्रास, भय और असुरक्षा आदि उसको घेर लेते है, दरअसल उन्हें सुरक्षा और स्नेह की आवश्यकता है। वृद्धों के मनोविज्ञान को समझना काफी नहीं है बल्कि आज के परिप्रेक्ष्य में उनके पुनर्वास का प्रश्न प्रबल हो उठा है।

स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी कथा साहित्य में चित्रा मुद्गल का विशिष्ट स्थान है। हिन्दी की स्वातंत्र्योत्तर कथाकारों में चित्रा ऐसी कथाकार हैं जिनकी रचनाओं में नारी-अस्मिता एवं मानवीय विकास से जुड़े मामलों को बहुत ही पारदर्शिता के साथ चित्रित किया गया है। इन्होंने अपने उपन्यास 'आवां', 'एक जमीन अपनी', 'गिलिगडु' और 'पोस्ट बाक्स नं. 203 नाला सोपारा' में क्रमश: स्त्री विमर्श, उपेक्षित एवं समाज में हाशिये का जीवन बिता रहे बुजुर्गों की समस्या और किन्नर जीवन की समस्या को उजागर करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। हिन्दी साहित्य में वृद्धों के जीवन एवं समस्याओं को केन्द्र में रखकर पर्याप्त साहित्य सृजन किया जा रहा है, जिनमें चित्रा का उपन्यास 'गिलिगडु' (2002) भी केन्द्र में आया। इस उपन्यास में अवकाश प्राप्त वृद्धों का दु:ख, घर, परिवार तथा समाज से उपेक्षित, दुर्व्यवहार के साथ घर से निकाले गये वृद्धों के जीवन की पीड़ा को चित्रित किया गया है। यह उपन्यास आकार में छोटा, किन्तु संवेदनशीलता का अथाह भंडार है। इसमें बुजुर्ग की एकरेखीय कहानी ही नहीं, अपितु उनके जीवन के बहुयामी रंग उभर कर सामने आये हैं। यह उपन्यास तेरह दिन की कहानी के माध्यम से दो बुजुर्ग सेवानिवृत्त सिविल इंजीनियर बाबू जसवंत सिंह एवं सेवानिवृत्त कर्नल स्वामी (विष्णु नारायण स्वामी) के जीवन का पूरा खाका ही नहीं अपितु आज के बदलते जीवन मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में घर, परिवार तथा समाज में बुजुर्गों की वास्तविक स्थिति को बहुत ही बेबाकी से चित्रित किया है। इस उपन्यास में मुख्य रूप से संयुक्त परिवार का एकल परिवार मे परिवर्तित होना, परिवार में बुजुर्गों की घटती अहमियत और वर्तमान में वृद्धों की समस्याओं की वास्तविक परिस्थिति को कई प्रसंगों के माध्यम से दर्शाया गया है।

'गिलिगडु' मलयालम शब्द 'किलि कलु' का हिन्दी रूपान्तरण है जिसका शाब्दिक अर्थ है- चिड़िया । लेकिन प्रस्तुत उपन्यास में 'गिलिगडु' शब्द का प्रयोग उपन्यास के बुजुर्ग पात्र कर्नल स्वामी की जुड़वा पोतियों के लिये किया गया है। गिलिगडु उपन्यास की कहानी ऐसे दो बुजुर्गों की है जो घर परिवार और आर्थिक रूप से समर्थ होते हुए भी अकेले हैं।

हमारे समाज में बुजुर्गों की तीन श्रेणियां हैं- एक वे हैं जिनका कोई परिवार नहीं है इसलिए अकेले रहने के लिए अभिशप्त हैं, दूसरे वे जो भरा-पूरा परिवार होते हुए भी अकेले रहने को बाध्य हैं और तीसरे वे हैं जो परिवार में रहकर भी अकेले हैं। इस उपन्यास में तीनों तरह के पात्र मौजूद हैं। उपन्यास के पात्र मिस्टर और मिसेज श्रीवास्तव जिनका जिक्र उपन्यास के अंत में कर्नल स्वामी के विषय में जानकारी देने के लिये पड़ोसी के रूप में हुआ है। वह दोनों दंपत्ति इसलिये अकेले हैं कि उनकी कोई औलाद नहीं है। मिसेज श्रीवास्तव कहती हैं- "ऐसे कसाई औलादों से तो आदमी निपूता भला है हमें इस बात का कोई गम नहीं कि मेरी कोई औलाद नहीं...।"[3] वहीं दूसरे पात्र कर्नल स्वामी जिनके तीन बेटे-बहुएं हैं तथा आर्थिक रूप से समर्थ होते हुए भी पत्नी की मृत्यु के बाद निपट अकेले रहने को अभिशप्त हैं। हालांकि इस बात को कभी किसी के सामने जाहिर नहीं होने देते, इस बात का खुलासा उनकी मौत के बाद उनके पड़ोसी बाबू जसवंत सिंह से करते हैं, तभी पाठक इस बात से रूबरू हो पाते हैं। इसी तरह उपन्यास के तीसरे पात्र बाबू जसवंत सिंह हैं जो घर, परिवार में रहते हुए भी अकेले हैं क्योंकि वह परिवार के लिये अब अतिरिक्त हो चुके हैं, उनकी कोई उपादेयता अब नहीं है।

भारतीय समाज में वृद्धों को पारंपरिक रूप से उच्च सामाजिक मान-मर्यादा मिलती रही है। शादी -विवाह, शिक्षा, आर्थिक मुद्दे आदि महत्त्वपूर्ण विषयों पर उनकी राय ली जाती रही है, लेकिन समाज के आधुनिकीकरण के कारण यह स्थिति बहुत तेजी से बदल रही है। यही कारण है कि युवाजन का वृद्धों के प्रति लगाव खत्म होता जा रहा है और उन पर अभद्रजनक टिप्पणी करने से बिलकुल नहीं हिचकते हैं। बाबू जसवंत सिंह के बेटे नरेन्द्र और बहू सुनयना का उनके प्रति व्यवहार इतना कठोर है कि वे दोनों उनका अपमान व तिरस्कार करने का कोई भी अवसर नहीं छोड़ते और यही कारण था कि बाबू जसवंत सिंह को कभी यह आभास नहीं होता है कि वह उनका अपना घर है। इस उपन्यास में बाबू जसवन्त सिंह के माध्यम से वृद्धावस्था में प्रवास की समस्या को भी दिखाया है। वे पत्नी की मृत्यु के बाद कानपुर छोड़कर दिल्ली नहीं जाना चाहते थे, लेकिन परिस्थितिवश मजबूर होकर उन्हें जाना पड़ता है। इस सन्दर्भ में लेखिका लिखती है- "दिल्ली बाबू जसवंत सिंह ने न कभी आना चाहा न आने के बाद कोई दिन गुजरा कि वे चिहुंक-चिहुंककर दिल्ली से उचाट न हुए हों।"[4]

तथाकथित आधुनिक समाज में यह कैसी विडम्बना कि एक पिता को अपने ही घर में बहू- बेटे से इतना भयाकुल हो जाना कि अपने दोस्त कर्नल स्वामी को एक कप कॉफी के लिये नहीं बुला पाते। बाबू जसवन्त सिंह को यह भय रहता है कि कहीं बहू सुनयना चाय-कॉफी तो दूर उनका तिरस्कार ना कर दे। "गेट के निकट पहुंचकर बाबू जसवन्त सिंह की इच्छा हुई कि अजनबी को घर चलकर एक कप कॉफी पीने का न्यौता दें, लेकिन न्यौता देने का साहस नहीं जुटा। ...कानपुर से दिल्ली आये उन्हें अरसा हो गया। घर की चौखट में दाखिल होते ही वे स्वयं को अपरिचितों की भांति प्रवेश करता हुआ अनुभव करते हैं। कैसे कहें !"[5] इस तरह बात-बात पर उपेक्षित होने पर बाबू जसवन्त सिंह को कभी भी ये नहीं लगता है कि ये उनका स्वयं का घर है। वे स्वयं की तुलना घर के कुत्ते से करते हुए कहते हैं- "इस घर में एक नहीं दो कुत्ते हैं-एक टॉमी, दूसरा अवकाश-प्राप्त सिविल इंजीनियर जसवन्त सिंह ! टॉमी की स्थिति निस्संदेह उनकी बनिस्बत मजबूत है। उसकी इच्छा-अनिच्छा की परवाह में बिछा रहता है पूरा घर। उनके लिये किसी को बिछे रहना जरूरी नहीं लगता। टॉमी अच्छी नस्ल का कुत्ता है। सोसाइटी में उनके घर का रुतबा बढ़ाता है। उनके चलते उनका रुतबा कलंकित हुआ है। कलंकित होकर अक्षत-चन्दन क्यों चढ़ाएं ?"[6]

कहा जाता है कि जीवन में भरोसा बहुत बड़ी बात होती है। अगर व्यक्ति पर अपनों का भरोसा नहीं रहता है तो वह पूरी तरह टूट कर बिखर जाता है, किन्तु अपनों का साथ हो तो व्यक्ति बड़ी से बड़ी मुश्किल का सामना कर लेता है। उपन्यास के पात्र बाबू जसवन्त सिंह को बवासीर की पुरानी शिकायत थी और पायजामा खोलकर मस्सों में हडिंसा ट्यूब लगा रहे थे तो गलती से खिड़की खुली रह जाती है, जिसके चलते पड़ोस में रहने वाली औरत को गलतफहमी होती है कि

बाबू जसवन्त सिंह उनकी बेटी को देखकर पायजामा खोलते हैं, इस पर वह उनकी शिकायत उनकी बहू सुनयना से करती है। बहू सुनयना उन पर आग के गोले की तरह बरस पड़ती है– "आखिर बाबूजी इस संभ्रांत सोसायटी में उनकी इज्जत खाक में मिलाने पर क्यों उतारू हैं? अपनी उम्र का लिहाज किया होता। अभी भी जवानी का जोश बाकी हो तो दिक्कत कैसी? चले जाया करें रेडलाइट एरिया। कौन पेंशन कम मिलती है उन्हें मौजमस्ती में हाथ बंधे हों? कम से कम अड़ोस–पड़ोस की किशोरियों पर तो नजर न डालें। मुँह दिखाने लायक रखें उन्हें सोसायटी में।"[7] वर्तमान में बुजुर्गों की स्थिति के सन्दर्भ में लेखिका क्षमा शर्मा लिखती है– "अपनों द्वारा ठुकराये जाने का जो मलाल होता है, उसका क्या कोई इलाज है ? उस अकेलेपन और अपमान के अहसास का क्या जो उनके करीबी जन उन्हें कराते हैं? वे बार–बार यह अहसास दिलाते हैं कि उनकी जरूरत अब घर में तो क्या इस धरती पर ही नहीं रही। उन्होंने जिनके लिए अपनी उम्र और अपने सारे संसाधन लगा दिये, वे ही दो जून की रोटी के लिए दुत्कारते हैं।"[8]

सूचना क्रांति के दौर में तथाकथित समझदार युवा पीढ़ी अपने बुजुर्गों को सम्मान ना देते हुए उन्हें अकेला जीवन जीने के लिए छोड़ देती हैं। इस युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व पात्र जसवंत सिंह का बेटा नरेंद्र करता है। इस पीढ़ी को वृद्ध की संपत्ति तो चाहिए होती है, लेकिन सेवा के लिये उनके पास कोई समय और जगह नहीं है। जसवंत सिंह को कानपुर से बेटे और बहू के द्वारा दिल्ली बुला लिया जाता है। यहां पर कदम कदम पर खुद अपमानित महसूस करते हैं बात बात पर उनको टोका जाता है। रहने के लिए भी बालकनी को रूम में तब्दील कर दिया जाता है, जो कहीं ना कहीं वृद्ध को हाशिये की ओर धकेलने का प्रतीक है। अपने बेटे की अपने प्रति उपेक्षा भाव को देखकर ही जसवंत सिंह विवश होकर नरेंद्र से संवाद करते हैं– "तुम कभी बूढ़े नहीं होंगे नरेंद्र"[9] यह संवाद बहुत ही सामाजिक और सच है।

उपन्यास के दूसरे पात्र कर्नल स्वामी की स्थिति और भी भयावह है, जिसे मुद्गल ने उपन्यास के अंत में बड़ी कुशलता से प्रकट किया है। कर्नल स्वामी एक ऐसा व्यक्तित्व है, जो परिवार द्वारा अकेले रहने के लिए विवश कर दिया गया है, लेकिन वह अकेलेपन में प्रसन्न रहने की कोशिश करते हैं। जसवंत सिंह से मिलने के बाद वह उनके समक्ष स्वयं को बहुत सुखी और आनंदित प्रस्तुत करते हैं, जबकि असल स्थितियां कुछ और थी। बहू सुनयना द्वारा अपमानित होकर जब इसकी शिकायत वे कर्नल स्वामी से करते हैं तो कर्नल स्वामी उन्हें समझाते हुए कहते हैं–"जीवन मुठभेड़ों से ही जिया जाता है मिस्टर सिंह !"[10] कर्नल स्वामी का उक्त वक्तव्य सुनकर उनसे खुद की तुलना करते हुए बाबू जसवन्त सिंह सोचते हैं– "कितनी मुठभेड़ें कोई झेल सकता है ? कर्नल स्वामी ही ऐसा महसूस कर सकते हैं और कह सकते हैं। दरअसल उपेक्षा और लांछनों के चीरते दंशों से वे कोसों दूर हैं। बेटों, बहुओं, पोतों, पोतियों ने उन्हें हाथों हाथ रखा हुआ है। घर की दीवारें चहचहाहट से गुलजार हैं। एक वे हैं – सपनों में सपना बुनते ही रह गये कि कानपुर वाले घर में उनके पोते–पोतियां हुड्दंगे मचाएं। दीवारों पर ककहरा लिखें। सींकों से हाथ–पांव वाले आदमी उकेरें। पेड़–पौधे रचें, जिनमें भरा गया रंग बाहर फैल पूरे घर को छींट दे। खाली हाथ घर में घुसते ही रिसाए बच्चों के फूले गाल उन्हें वापस बाजार दौड़ा दें..."[11]

संयुक्त परिवार भारतीय संस्कृति का प्रमुख वैशिष्ट रहा है, जहां संबंधों को महत्त्व दिया जाता था, किंतु आज न तो संबंध की जरूरत न ही मूल्यों की। जसवंत सिंह की बेटा और बेटी दोनों ही जमीन जायदाद को लेकर लालायित हैं, जसवंत सिंह की बेटी उनसे कहती है– "लॉकर में अभी है तो बहुत कुछ बाबूजी। अम्मा के कई सेट, पांच तोले के आजी वाली नाथ, चांदी का ढेरों सामान। अम्मा हमेशा कहती रही अपनी पचलड़ और कुंदन का सेट वे अनीता को देंगी और विक्रम की बहू के लिये...।"[12] अपनी बेटी से यह बात सुनकर गहरा आघात पहुंचता है और उनके हाथों से फोन रिसीवर छूट जाता है।

प्राचीनकाल से हमारे समाज में प्रचलित रहा है कि दाह संस्कार पर पुत्राधिकार है, लेकिन चित्रा मुद्गल ने इस उपन्यास में उस परम्परा की धज्जियाँ उड़ा कर रख दी हैं। जसवंत सिंह जब कर्नलस्वामी की स्थिति से रूबरू होते हैं तब परिवार के प्रति उनका रहा सहा मोह भी भंग हो जाता है। यही कारण है कि उनका प्रेम बेटा–बहू और बेटी की अपेक्षा कानपुर के घर में रहने वाली नौकरानी सुनगुनियां और उसके बच्चों के प्रति अधिक उमड़ता है। सुनगुनियां को बाबू जसवन्त सिंह न केवल अपना उत्तराधिकारी नियुक्त करते हैं बल्कि बाकी की जिन्दगी भी इज्जत व सम्मान के साथ सुनगुनियां के साथ जीना चाहते हैं, और इतना ही नहीं अपने शव को मुखाग्नि देने की जिम्मेदारी भी उसे ही सौंपते हैं। लेखिका लिखती है– "सुनगुनियां से वे कहकर जाएंगे और उसे अपनी वसीयत में स्पष्ट लिखवा भी देंगे कि सुनगुनियां का पुत्र रामरतन, न अभिषेक आसरे ही उनकी कपालक्रिया करे। उसे ही वह अपने दाह–संस्कार का अधिकार दे रहे हैं।"[13] जो कि अपने आप में एक बहुत बड़ी सामाजिक क्रान्ति है। चित्रा लिखती है– "बाबू जसवन्त सिंह सुनगुनियां से यह भी कहना चाहते हैं कि कानपुर पहुंचते ही वे अपने परिचित एडवोकेट मुन्ना सिंह कुशवाहा से अविलम्ब मुलाकात करेंगे। उनसे अपनी नयी वसीयत बनवाएंगे और उसे रजिस्टर्ड करवाएंगे कि कानपुर वाला घर उनकी पैतृक संपति नहीं है। उनकी अर्जित संपत्ति है। उनके न रहने पर उस घर की एकमात्र अधिकारिणी सुनगुनियां होगी।"[14] वस्तुत: इस उपन्यास में मूल्यों के टूटन से उपजी भयावहता का बेबाक चित्रण किया गया है, जहां न आपसी प्रेम है और न ही लगाव है।

देश में औद्योगीकरण और नगरीकरण के विस्तार के साथ परिवार के मूल स्वरूप में भी व्यापक परिवर्तन हुए हैं। आजकल बच्चें अपना बचपन कम्प्यूटर, टी.वी., मोबाईल और इंटरनेट पर ढूंढ रहे हैं। बच्चों में भावनात्मक रिश्ते नाम की चीज ही नहीं रह गयी है। बच्चों को शुरू से ही इस तरह सीमित रहना सिखाया जाता है कि वे खुद में या दोस्तों में ही सिमट कर रह जाते हैं। बाबू जसवन्त सिंह पोते को जन्मदिन की पार्टी देना चाहते हैं तथा भावनात्मक तौर पर उससे जुड़ने की कोशिश करते हैं लेकिन मलय का यह करारा जवाब उनके दिल को गहरी ठेस पहुँचाता है– "उसका यह कार्यक्रम उसके दोस्तों के साथ है। घरवाले इसमें शामिल नहीं होंगे। ...अपनी गाड़ी के लिए पापा उस रोज दफ्तर से ड्राइवर बुलवा लेंगे। न, न दादू ! अपने साथ हम किसी भी बड़े को नहीं ले जाएंगे – पार्टी बोरिंग हो जायेगी।"[15] इस सन्दर्भ में चित्रा मुद्गल लिखती है– "बुद्धिविकास की आड़ में बड़ी खूबसूरती से बच्चों को संवेदना–च्युत किया जा रहा–इतना कि बच्चे कभी परिवार में न लौट सकें, न कभी अपना कोई परिवार गढ़ सकें।"[16]

बदलते सामाजिक परिवेश में संयुक्त परिवारों का विखण्डन बड़ी तेजी से एकल परिवार के रूप में हुआ है। विघटित संयुक्त पारिवारिक व्यवस्था के एकल स्वरूप ने आधुनिक और परम्परागत दोनों पीढ़ियों को समान रूप से प्रभावित किया है। एक तरफ जहां आज की कथित आधुनिक पीढ़ी परम्परागत पालन–पोषण, बुजुर्ग सदस्यों के प्यार–दुलार तथा सामाजिक मूल्यों–संस्कारों से दूर होती जा रही है, वही दूसरी तरफ एकल पारिवारिक व्यवस्था ने बुजुर्गों को एकाकी जीवन जीने को विवश किया है। देश में बुजुर्गों का एक बड़ा तबका या तो अपने घरों में तिरस्कृत एवं उपेक्षित जीवन जी रहा है या वृद्धाश्रमों में अपनी शेष जिन्दगी बेबसी के साये में वितानें को मजबूर है। उपन्यास का पात्र नरेंद्र भी अमेरिका जाने की सोचता है तो अपने पिता जसवंत सिंह को वृद्धाश्रम में छोड़ना चाहता है। बाबू जसवन्त सिंह ने जब बेटी से उनके साथ हो रहे उपेक्षित व्यवहार की शिकायत की तो वह भी उल्टा उन्हें ही डाटने लगी– "वह यह भी मानते हैं कि उनके स्वभाव में आये परिवर्तन का कारण है अम्मा का अचानक चले जाना। अकेलापन उन्हें खाये जा रहा। मगर भैया के अकेले प्रयत्नों से तो अशान्ति कम नहीं हो सकती। बाबूजी को भी अपनी खोह से बाहर निकलने की जरूरत है।...भैया तो यहाँ तक सोच रहे हैं कि जहां बाबूजी का मन लगे, वे प्रसन्नचित्त रहें, उन्हें वहीं रखा जाये। उन्होंने पता लगाया है कि नोएडा के सेक्टर पचपन में कोई आनन्द निकेतन वृद्धाश्रम है, क्यों न उनके रहने की व्यवस्था वहीं कर दी जाये।...उन्हें वहां रखने के निर्णय से भैया पर

खर्च का अतिरिक्त बोझ पड़ेगा। भैया उसे सहर्ष उठाने के लिये तैयार है।"[17] बेटी शालू के इस वक्तव्य ने बाबू जसवन्त सिंह के जीने की चाह ही खत्म कर दी और उनको बहुत तेज बुखार ने आ घेरा। डॉ. नीलम सराफ़ लिखती है– "पुत्र द्वारा उपेक्षा और पुत्री की विवशता दोनों ही वृद्धों की ओर ध्यान दिए जाने में बाधक बनते हैं।"[18]

प्राय: देखा जाता है कि पुरुष की तुलना में महिलाएं कम अहमन्य होती हैं और वे अपने प्रति जागरूक भी नहीं होती। बाबू जसवंत सिंह की पत्नी को अपने बहू–बेटे के लिए इस उम्र में भी काम करके खुशी मिलती थी, जबकि बाबू जसवन्त सिंह स्वयं पूरे समय कुछ–न–कुछ कमियाँ खोजते रहते थे। वे वही इज्जत और सम्मान चाहते थे जो उनको प्रौढ़ावस्था में मिलता था। अहम फैसलों में अपनी नजरअंदाजी वे सहन नहीं कर पाते। परिवार में वृद्धों को चौबीसों घंटे जितना अपने मान–सम्मान का ध्यान रहता है, उतना अन्य किसी भी चीज का नहीं रहता है। अपने बहू–बेटे की शिकायत करने पर कर्नल स्वामी उल्टा उन्हें डाटते हुए कहते हैं–"सच तो यह है दोस्त, आपको दु:ख ओढ़ने बिछाने की आदत पड़ गयी है। साधारण बात पहार हो उठती है। दरअसल यह और कुछ नहीं है मिस्टर सिंह–बूढ़ों की शासन न कर पाने की कुंठा है।"[19]

निष्कर्षत: भारत विश्व में संबंधों की आत्मीयता और गरिमा के लिये जाना जाता है, लेकिन अब यहां भी स्थितियां बदल चुकी हैं। चित्रा ने इस उपन्यास के बहाने बुजुर्गों की दुनिया के अनेकों ऐसे मनोभावों को सूक्ष्म स्तर पर अभिव्यक्त करने की कोशिश की जिनसे हमारी युवा पीढ़ी बेखबर है। आधुनिकता बोध, उदारीकरण और सूचना प्रौद्योगिकी की आंधी ने भारतीय जीवन–मूल्यों को बिखेर दिया है। उपभोक्ततावादी संस्कृति ने वसुधैव कुटुम्बकम की भावना को खोखला सिद्ध कर दिया और संयुक्त परिवार का एकल परिवार में तब्दील होने से एकल परिवार की विसंगतियों को परिवार के बुजुर्गों को सहना पड़ता है। जहां व्यक्ति अपना संपूर्ण यौवन अपने बच्चों के लिये होम कर देता है वहीं बच्चे अपने कर्तव्य से विमुख होकर माता–पिता को अकेलेपन में जीवन जीने के लिये छोड़ देते हैं। बाबू कर्नल स्वामी और बाबू जसवंत सिंह जैसे वृद्ध पात्रों की संख्या हमारे समाज में बहुत हैं जो किसी न किसी रूप में अकेलापन जीने के लिये विवश हैं। परिवार समाज की प्रथम इकाई होती है। परिवार के प्रत्येक सदस्य का कर्तव्य है कि बुजुर्गों की देखभाल करें। बुजुर्गों के प्रति सम्मानजनक और गरिमामय वातावरण निर्मित करना परिवार, समाज और सरकार का संयुक्त रूप से उत्तरदायित्व है। हमारे बुजुर्ग परिवार, समाज और राष्ट्र के लिये किसी धरोहर से कम नहीं हैं। पारिवारिक और सामाजिक मूल्यों को पुन: स्थापित करने के लिये नयी पीढ़ी को वृद्धों के प्रति संवेदनशील होने की आवश्यकता है। बुजुर्गों के लिये परिवार का अर्थ आत्मीयता, घनिष्ठता एवं सुरक्षा है, जिसका विकल्प राज्य द्वारा उत्तम प्रयास, सुविधाएं तथा योजनाओं के आधार पर नहीं बनाया जा सकता है।

सन्दर्भ सूची-

1. पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी, निबन्ध, वृद्धावस्था
2. मनुस्मृति, 2/121
3. मुद्गल, चित्रा, *गिलिगडु,* सामयिक प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2002, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या 138
4. वही.....पृष्ठ संख्या 36
5. वही.....पृष्ठ संख्या 14
6. वही.....पृष्ठ संख्या 96
7. वही.....पृष्ठ संख्या 59

8. सं. संजय गुप्त, दैनिक जागरण (राष्ट्रीय संस्करण), दैनिक हिन्दी समाचार पत्र, रविवारीय अंतराल के अंतर्गत 'अपनोंकी अनदेखी का दर्द'– क्षमा शर्मा, नयी दिल्ली, 11 जून 2017
9. मुद्गल, चित्रा, *गिलिगडु,* सामयिक प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2002, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या 61
10. वही.....पृष्ठ संख्या 61
11. वही.....पृष्ठ संख्या 61–62
12. वही.....पृष्ठ संख्या
13. वही.....पृष्ठ संख्या 144
14. वही.....पृष्ठ संख्या 144
15. वही.....पृष्ठ संख्या 33–34
16. वही.....पृष्ठ संख्या 34
17. वही.....पृष्ठ संख्या 96–97
18. सराफ़, डॉ. नीलम, *हिन्दी उपन्यास सामाजिक समस्याएँ,* हिन्दी बुक सेन्टर, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या 106
19. मुद्गल, चित्रा, *गिलिगडु,* सामयिक प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2002, नयी दिल्ली, पृष्ठ संख्या 93